मुस्लिम साम्प्रदायिकता और भारत

अनामिका कुमारी

एम.ए., यू.जी.सी. नेट (इतिहास)

मुस्लिम साम्प्रदायिकता भारतीय जनजीवन की या ब्रिटिश शासन नीति की उपज है, पर महात्मा गॉधी ने अपना स्पष्ट विचार व्यक्त किया है कि ''भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या ब्रिटिश शासन की समकालीन है''।[1] वास्तविकता भी कुछ यही है क्योंकि 1857 की असफल क्रान्ति से सचेत होकर अंग्रेजों ने मुसलमानों को हिन्दुओं के विरोध में खड़ा किया। कट्टरपन्थी मुसलमानों को यह अन्देशा था कि अंग्रेजों के चले जाने के बाद राज पाट का काम हिन्दुओं के हाथ में आ जायेगा। जिस समुदाय पर उन्होंने कई सौ साल तक राज किया और उनसे गुलामों से भी बदतर सलूक किया हो, उन शासितों के साथ वे बराबरी से कैसे रह सकते हैं ? 16 मार्च 1888 को सर सैय्यद अहमद खॉन ने मेरठ की एक सभा में कहा था, क्या यह मुमकिन है कि दो कौमें हिन्दू और मुसलमान एक ही गद्दी पर बैठें और ताकत में बराबर हों ? बेशक नहीं। यह जरुरी है कि उनमें से एक दूसरे को शिकस्त दे। जब तक एक कौम दूसरे को जीत न ले, मुल्क में अमन कभी भी कायम नहीं हो सकता। इस देश के अधिकांश मुसलमानों ने सर अहमद के इसी दर्शन को आत्मसात किया।

भारतीय मुसलमान जाति व भाषा की दृष्टि से अन्य लोगों से भिन्न नहीं हैं जिनके पूर्वज बाहर से आये थे, ऐसे मुसलमानों की संख्या बहुत कम थी जैसा कि आन्ध्र–सरकार में मानव–संसाधन विकास मंत्रालय के सलाहकार पी0एस0 कृष्णन ने अपने रिपोर्ट में लिखा है कि, ''हिन्दुओं का इस्लाम धर्म स्वीकार करने की प्रक्रिया समय के साथ चलती रही। मध्य–काल में यह कुछ ज्यादा ही हुआ। हिन्दू धर्म के कड़े नियमों से नाखुश होकर लोगों ने इस्लाम स्वीकार कर लिया। इन लोगों ने छुआछूत और भेद–भाव से बचने के लिये इस्लाम धर्म को अपनाया।[2] धर्मान्तरण इस्लाम हुकूमत के दौरान बढ़ा। मो0–विन–कासिम के हमले के पूर्व भारत में कोई मुसलमान नहीं था। मुस्लिम संख्या बढ़ने से ही पाकिस्तान बना अर्थात अधिकांश मुसलमान इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेने वाले हिन्दुओं की संतान हैं। इसके अतिरिक्त शताब्दियों से एक दूसरे के साथ मिल जुल कर निवास करते रहने के कारण भारतवर्ष के हिन्दुओं और मुसलमानों ने एक दूसरे के प्रति अनुकूल बनने और एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता की स्वस्थ भावना को सुविकसित करने की प्रवृत्ति अपना ली थी। यद्यपि कभी –कभी इन दो धर्मो में मनमुटाव भी हो जाता था, फिर भी दोनों ने एक दूसरे के साथ सहयोग स्थापित करने का एक आकर्षक आदर्श स्थापित करने में सफलता प्राप्त कर ली थी , लेकिन ''फूट डालो और शासन करो'' सदैव से ही औपनिवेशिक राज्य का आधार था। अतः अंग्रेजों ने स्वयं को राष्ट्रीयता के इस वेगवान प्रवाह को खण्डित करने के कार्य में संलग्न कर दिया। 1857 के स्वतंत्रता– संग्राम की असफलता के बाद ब्रिटिश शासन के द्वारा भारत पर नियंत्रण रखने की नियत से ऐसा कुचक्र रचा गया था। इसके अन्तर्गत 1857 से 1870 तक हिन्दू समर्थक किन्तु 1870 के बाद ब्रिटिश नीति में परिर्वतन हुआ और उस समय से ''ऑग्ल– मुस्लिम–मित्रता'' की नींव पड़ी। इस नीति के अन्तर्गत 1893 में ''मोहम्मडन–ऐंग्लो–ओरियंटल–डिफेन्स–एसोशिएशन'' की स्थापना की गयी और मुसलमानों को 'राष्ट्रीय कांग्रेस' से अलग रखने का प्रयास किया गया। इसके बाद 1905 में लार्ड–कर्जन द्वारा 'बंगाल का विभाजन' किया गया। बंगाल का यह विभाजन साम्प्रदायिक राजनीति को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से ही किया गया था।[3] इन बातों को तीन सोपानों में बॉटकर अध्ययन करना उचित होगा –

1. '' मुस्लिम साम्प्रदायिकता का जन्म''

1906 में एक ऐसी घटना घटित हुई जिसने हिन्दू – मुस्लिम सम्बन्धों पर दूरगामी प्रभाव डाला और कालान्तर में भारतीय इतिहास को ही परिवर्तित कर दिया। 1906 में लार्ड –मिन्टो ने भारत के लिये और अधिक वैधानिक सुधारों पर विचार करने के लिये एक कमेटी स्थापित की थी। जिसके द्वारा भारत में प्रतिनिध्यात्मक संस्थाओं की स्थापना की सिफारिश की जानी थी। ऐसी स्थिति में 01 अक्टूबर 1906 को सर आगा खॉ की अध्यक्षता में एक मुस्लिम प्रतिनिधि–मंडल वायसराय से शिमला में मिला, जिसने वायसराय के सम्मुख यह मॉग रखी कि आगामी सुधारों में चुनाव का सिद्धान्त मान लिया जाता है तो मुसलमानों के लिये साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व स्वीकार किया जाना चाहिये। इस के साथ ही भारत में इनकी महत्वपूर्ण स्थिति और सम्राट के प्रति उनकी भक्ति को दृष्टि में रखकर उन्हें भारात्मक

प्रतिनिधित्व (Weightage) दिया जाना चहिये और उचित हितों की रक्षा करने के लिये दूसरे आवश्यक कदम भी उठाये जाने चाहिये। वायसराय तो प्रतिनिधि मंडल की मांग को स्वीकार करने के लिये तैयार बैठे थे, अतः उन्होने प्रतिनिधि मंडल की दोनों ही मांगों को स्वीकार करने का आश्वासन दिया और 1909 के कानून में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व और मुसलमानों के लिये भारात्मक प्रतिनिधित्व को अपना लिया गया। साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था को स्वीकार किये जाने के साथ ही भारत की साम्प्रदायिक एकता में पलीता लग गया।

उपर्युक्त प्रतिनिधि मंडल के सम्बन्ध में अब यह बात नितान्त स्पष्ट हो गयी है कि इसका सम्पूर्ण आयोजन ब्रिटिश नौकरशाही के द्वारा ही किया गया था। मौलाना मोहम्मद अली ने सन् 1923 के अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था कि, '1906 के शिष्ट – मंडल का अभिनय अंग्रेज सूत्रधारों के निर्देशानुसार किया गया था।'[4] मौलाना मोहम्मद अली के उपर्युक्त कथन की पुष्टि में अनेक बातें कही जा सकती हैं। 10 अगस्त 1906 को अलीगढ़ कालेज के प्रिन्सिपल मि0 आर्कवोल्ड ने कालेज के सचिव नवाब मोहसिन–उल–मुल्क को लिखा था कि, 'महामहिम वायसराय के निजी सहायक कर्नल डनलप स्मिथ ने मुझे बताया है कि महामहिम मुस्लिम शिष्ट–मंडल से भेंट करने के लिए सहमत हैं। उन्होने यह सलाह दी है कि, महामहिम से भेंट करने की अनुमति मॉगने के लिए उनके पास एक औपचारिक पत्र भेज दिया जाय। यह पत्र मुसलमानों के कुछ प्रमुख प्रतिनिधियों के हस्ताक्षर से युक्त होना चाहिए। मेरा सुझाव यह है कि हम इस पत्र का प्रारम्भ राजभक्ति की गम्भीर अभिव्यक्ति के साथ करें। बाद में हम स्वशासन की दिशा में सरकारी प्रयत्न की सराहना करें। किन्तु इसी सन्दर्भ में हम अपना यह भय भी प्रकट कर दें कि निर्वाचन का सिद्धान्त मुस्लिम अल्पसंख्यकों के हितों के प्रतिकूल होगा। इसके उपरान्त विनयपूर्वक यह संकेत किया जाना चाहिए कि मुसलमानों की मॉग को पूरा करने के लिए धर्मानुसार प्रतिनिधित्व देने अथवा नाम निर्देशन करने की व्यवस्था की जाय, लेकिन इस सिद्धान्त कार्य में मुझे पृष्ठभूमि में ही रखा जाना चाहिए – समय अधिक नहीं है इसलिए हमें शीघ्रता करनी चाहिए।[5]

सर सैय्यद के उत्तराधिकारी नवाब मोहसिन–उल–मुल्क के नाम आर्कवोल्ड के पत्र के उद्धरण से यह स्पष्ट है कि साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का विचार मुसलमानों की अपनी सूझ नहीं थी। यह अंग्रेजी दिमाग की उपज थी। ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधानमंत्री रैम्जे–मैकडानल्ड के अनुसार, ''पृथक साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की मॉग को शुरू करना तथा उसे लागू करने का श्रेय ब्रिटिश नौकरशाही की है।''[6]

अपनी पृथकतावादी मॉगों के प्रति ब्रिटिश सरकार के प्रोत्साहन और 1906 के शिष्ट–मंडल की सफलता से मुस्लिम नेताओं का उत्साह बढ़ना स्वाभाविक था, जिसके कारण ढाका के नवाब सलीमुल्ला खॉ ने 'आल–इण्डिया–मुस्लिम–संघ' के नाम से एक राजनीतिक संगठन बनाने का प्रस्ताव रखने हेतु नेताओं की एक मीटिंग ढाका में 30 दिसम्बर, 1906 को बुलाई, जिसके अध्यक्ष नवाब बकारूल मुल्क थे। सम्मेलनोपरान्त प्रस्ताव के अनुसार, 'आल–इण्डिया–मुस्लिम–लीग' के नाम से मुसलमानों का एक राजनीतिक संगठन बनाया गया जिसके उद्देश्य निम्न थे–

1. भारतीय मुसलमानों में ब्रिटिश शासन के प्रति निष्ठा की भावना पैदा करना और सरकार द्वारा उठाये गये कदमों के अभिप्राय के बारे में पैदा हुई भ्रांत धारणाओं को दूर करना।
2. भारतीय मुसलमानों के राजनीतिक तथा अन्य अधिकारों की रक्षा करना, उनकी आकांक्षाओं और आवश्यकताओं को नम्र भाषा में सरकार के सामने पेश करना और
3. उपर्युक्त उद्देश्यों को हानि पहुॅचाये बिना जहॉ तक सम्भव हो, मुसलमानों और दूसरी जातियों के बीच मित्रता के भाव पैदा करना।

मुस्लिम लीग की राजनीतिक आकांक्षाओं और अंग्रेजी शासन के प्रति लीग के दृष्टिकोण की एक झलक नवाब–बकारूल–मुल्क के उस भाषण में देखी जा सकती है जो उन्होंने ढाका सम्मेलन के करीब तीन माह बाद अलीगढ़ में विद्यार्थियों के एक सभा में दिया था, वह इस प्रकार थी :–

''ईश्वर न करे यदि भारत से अंग्रेजी शासन समाप्त हो जाये तो हिन्दू ऐश करेंगे और हम लोगों को हर समय अपने जान माल और इज्जत का खतरा रहेगा। मुसलमानों को इस खतरे से बचाने का सिर्फ एक रास्ता है– अंग्रेजी शासन को कायम रखने में मदद करना.....हमें कांग्रेसियों की आन्दोलनकारी राजनीति को नहीं अपनाना चाहिए। अंग्रेजी शासन के प्रति राज भक्त रहना तुम्हारा राष्ट्रीय कर्तव्य है। तुम जहॉ भी हो चाहे फुटबाल के मैदान में या टेनिस के खेल में अपने आप को अंग्रेजी फौज का सिपाही समझो।[7]

1908 के मुस्लिम लीग अधिवेशन में, जो अमृतसर में हुआ, जातीय प्रतिनिधित्व की वृद्धि तथा प्रीवी–कौंसिल में एक हिन्दू तथा एक मुसलमान को शामिल करने की मांग की गयी तथा सरकारी नौकरियों में मुसलमानों को पर्याप्त स्थान दिये जायॅ। 1904 तथा 1910 के अधिवेशनों में भी ये मांगे दोहरायी गईं तथा साम्प्रदायिकता की भावना को बढ़ावा देने के लिए अंग्रेजों ने भी पर्याप्त सहयोग दिया।

सन् 1911 तक मुस्लिम लीग साम्प्रदायिक नीति पर ही चलती रही परन्तु धीरे –धीरे लीग के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ और मुस्लिम लीग ब्रिटिश शासन से दूर हटकर कांग्रेस के निकट आती गई। मुस्लिम लीग के दृष्टिकोण में उपर्युक्त परिवर्तन के अनेक कारण थे–

1. अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति – शासन के प्रति मुस्लिम लीग के दृष्टिकोण में परिवर्तन का सबसे बड़ा कारण यह था कि इस समय टर्की इस्लाम की महानता का प्रतीक बन गया था और टर्की के सुल्तान–हामिद इस्लाम के खलीफा भी थे लेकिन इंग्लैण्ड और रूस–टर्की के प्रति शत्रुतापूर्ण नीति अपना रहे थे जिससे भारतवर्ष के मुस्लिम वर्ग की राजभक्ति को बहुत झटका पहुॅचा।

2. कांग्रेस के प्रति सरकारी रूख में परिवर्तन आ गया था। कांग्रेस, मिण्टो–मार्ले सुधारों की आलोचना के बावजूद उन्हें क्रियान्वित करने की चेष्टा कर रही थी और नये गवर्नर जनरल लार्डहार्डिंग्स का कांग्रेस के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण था, जिसके कारण मुस्लिम पृथकतावाद में पहले का सा बल नहीं रहा और वह धीमा पड़ गया।

3. 1911 मे बंगाल का विभाजन रद्द कर दिये जाने की घटना ने भी मुसलमानों पर बहुत असर डाला। शासन ने बंग–भंग को रद्द करने का निर्णय करने से पूर्व मुसलमानों से परामर्श तक नहीं किया था, जिसके फलस्वरूप मुसलमान अत्यन्त रूष्ट थे और अंग्रेजों की सद्भावना में अब उनका विश्वास नहीं रहा।[8]

4. लीग के प्रारम्भिक वर्षों में उसपर अलीगढ़ के अर्द्ध सामन्ती और पृथकतावादी तत्वों का नियंत्रण था, किन्तु 1912 तक मुस्लिम लीग में अबुल–कलाम–आजाद , मौलाना मुहम्मद अली , शौकत अली , मुहम्मद अली जिन्ना, डॉ0 अंसारी और हकीम अजमल खां जैसे नवयुवक मुस्लिम नेताओं को प्रमुखता प्राप्त हो गयी, जो राष्ट्रीयता और देशभक्ति की भावना से परिपूर्ण थे और ब्रिटिश साम्राज्यवाद को सभी भारतीयों के लिये अभिशाप (कामरेड–हमदर्द और अल–हिलाल) के द्वारा मुसलमानों के दृष्टिकोण को राष्ट्रीय रुप प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की गयी। लीग के दृष्टिकोण में उपर्युक्त परिर्वतन के कारण उनके संविधान में संशोधन करते हुए घोषित किया गया कि, 'मुसलमानों तथा भारत के अन्य सम्प्रदायों के मध्य मित्रता तथा एकता को बढ़ाना और ब्रिटिश सम्राट के संरक्षण में रहते हुये भारत की प्रतिभा के उपर्युक्त स्वायत्त– शासन की प्राप्ति भी लीग का उद्देश्य है।[9]

मुस्लिम लीग की नीतियों में धीरे–धीरे परिवर्तन से कांग्रेस ने उसका स्वागत किया। सन् 1913 के कांग्रेस अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास कर टर्की तथा फारस के प्रति सद्भावना ब्यक्त की गयी, जिससे कांग्रेस और मुस्लिम लीग की दूरी कम हो गयी, फलस्वरूप ब्रिटिश शासन और ऐग्लो–इण्डियन समाचार पत्र विचलित होकर इस परिवर्तन को रोकने की चेष्टा की, लेकिन वे असफल रहे। सन् 1915 तक मुस्लिम लीग पर राष्ट्रवादी मुसलमानों का प्रभुत्व स्थापित हो गया और इस वर्ष के लीग अधिवेशन में कांग्रेस के प्रमुख नेताओं महात्मा गॉधी, मदन मोहन मालवीय तथा सरोजनी नायडू आदि राष्ट्रीय नेता अधिवेशन में सम्मिलित हुए। मि0 जिन्ना ने इस अधिवेशन में भारत के राजनीतिक सुधारों पर विचार करने के लिए एक ऐसी समिति के निर्माण की योजना प्रस्तुत की जो कांग्रेस के साथ मिलकर कार्य करे। इस समिति के द्वारा सन् 1916 में संयुक्त–कांग्रेस–लीग योजना तैयार की गयी जो ''लखनऊ समझौते'', के नाम से प्रसिद्ध है। सन् 1926 में एक ही समय पर कांग्रेस तथा लीग के अधिवेशन हुए और उन अधिवेशनों में कांग्रेस –लीग योजना को स्वीकार कर उसे सरकार के विचारार्थ प्रस्तुत किया गया।

लखनऊ समझौते की प्रस्तावना में कांग्रेस और लीग ने एक स्वर से यह मॉग की थी कि 'साम्राज्य के पुनर्गठन में भारत को पराधीनता की बेड़ी से ऊपर उठाया जाकर आत्म – शासित उपनिवेशों की भॉति साम्राज्य के कार्यों में बराबर का हिस्सेदार बनाये जाना चाहिए। इस पुष्टि से लखनऊ समझौते को 'भारतीय–राष्ट्रवाद की एक बहुत बड़ी विजय कहा गया है। लेकिन कुछ विद्वानों ने इस समझौते की कटु आलोचना भी किया है।

डॉ0 पुखराज जैन के अनुसार –: 'ये बिल्कुल गलत है, क्योंकि इस समझौते में कांग्रेस द्वारा स्वयं अपने सिद्धान्तों तथा राष्ट्रीयता की आहुति दे दी गयी थी। समझौते के अन्तर्गत कांग्रेस द्वारा मुसलमानों की प्रतिनिधि संस्था के रूप में मुस्लिम लीग का अस्तित्व, साम्प्रदायिक– प्रतिनिधित्व और मुसलमानों के लिए प्रतिनिधित्व में गुरूता को स्वीकार कर लिया गया था। जो कांग्रेस के अब तक घोषित संकल्पों और सिद्धान्तों के नितान्त विरूद्ध था। इस समय

कांग्रेस लीग के साथ समझौता करने के लिए इतनी अधिक उत्सुक थी, कि उससे देश के उपर पड़ने वाले परिणामों का किंचित मात्र भी विचार न करते हुए कार्य किया'।[10]

डॉ0 ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में–:''ये समझौता लीग के प्रति कांग्रेस की तुष्टीकरण नीति का प्रारम्भ था।''[11]

इससे हिन्दू–मुस्लिम एकता के वातावरण का निर्माण हुआ तथा अंग्रेजी शासन के विरूद्ध एक सशक्त विरोध रूपी संदेश भी गया क्योंकि अंग्रेजी शासन 'बॉटो और राज्य करो' की नीति की अनुयायी थी और उसने 1910 तक यही प्रयास किया भी था।

1917 में मुस्लिम लीग के कोलकाता–अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए महमूदाबाद के राजा ने कहा था। '' देश के हित सर्वोपरि हैं हमें इस प्रकार की बहस में नहीं पड़ना चाहिए कि हम पहले मुसलमान हैं, हमारे लिए प्राथमिकता का कोई प्रश्न नहीं है।''[12]

उपर्युक्त सभी विवरण यह स्पष्ट कर रहे हैं कि कांग्रेस ने लीग के साथ क्यों सहयोगात्मक प्रयत्न करना चाहा था। हॉ यह सत्य है कि मुस्लिम लीग एवं भारतीय एकता को सजोने के लिए मुसलमानों के लिए गुरूता (वेटेज) को देना आवश्यक हो गया होगा। इसी वजह से (मित्रवत् व्यवहार) हिन्दुओं तथा मुसलमानों ने सामूहिक रूप से महात्मा गॉधी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन में भाग लिया जो समय की मॉग भी थी। अतः 1919–20 के असहयोग काल को हिन्दू– मुस्लिम सहयोग का चर्मोत्कर्ष कहा जा सकता है।

2. ''राष्ट्रीयता से साम्प्रदायिकता की ओर''

1916से 1920 तक का यह काल हिन्दू – मुस्लिम सहयोग का सौभाग्य पूर्ण होते हुए भी अस्थायी सिद्ध हुआ। फरवरी 1922 में महात्मा गॉधी द्वारा असहयोग – आन्दोलन स्थगित किये जाने के साथ ही मुस्लिम लीग और मुस्लिम जनता के एक बड़े भाग ने फिर से राष्ट्रीयता के स्थान पर साम्प्रदायिक प्रवित्तियों को अपना लिया जिसके अनेक कारण थे – सर्वप्रथम, मुस्तफा कमाल पाशा के नेतृत्व में टर्की की स्थिति में परिवर्तन हो जाने के कारण खिलाफत–आन्दोलन समाप्त हो गया था और भारत के मुसलमानों के पास ब्रिटिश सरकार के विरोध का कोई आधार नहीं रहा। द्वितीय, लीग के नेता उस महत्वपूर्ण स्थिति को पुनः प्राप्त करना चाहते थे,जो कांग्रेस के साथ सहयोग के कारण उनके हाथ से निकलती जा रही थी। इसके अतिरिक्त इस समय हिन्दुओं में भी साम्प्रदायिक भावनाओं ने उग्र रूप धारण कर लिया था और मुस्लिम साम्प्रदायिकता की प्रतिक्रिया के रूप में हिन्दू महा सभा की स्थापना हो गयी थी, जिसने मुस्लिम साम्प्रदायिकता को उग्र रूप देने का ही कार्य किया। ब्रिटिश सरकार 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति में संलग्न थी ही। जातीय समाचार पत्रों ने साम्प्रदायिक विद्वेष की अग्नि में आहुति का कार्य किया। परिणाम स्वरूप साम्प्रदायिक विद्वेष की अग्नि इतनी तीव्र हो गयी थी कि अब इसने दंगों और उपद्रवों का रूप ग्रहण कर लिया। मालावार में तो मोपला मुसलमान अपने हिन्दू पड़ोसियों की पहले ही निर्ममता पूर्वक हत्या कर चुके थे। सन् 1922 से लेकर 1927 तक हिन्दू –मुस्लिम उपद्रवों की संख्या में बाढ़ सी आ गयी। इन दुखद घटनाओं का तात्कालिक कारण साधारणतया गो–बध, मस्जिद के सामने बाजे का प्रश्न या होली के अवसर पर रंग डालने की मामूली सी घटना होती थी। एक विशेष बात यह थी कि अत्यधिक कार्य–कुशल समझी जाने वाली ब्रिटिश सरकार ने इन दंगों को रोकने में सम्भवतया जान–बूझकर अत्यधिक निष्क्रियता का परिचय दिया था। इन उपद्रवों से महात्मा गॉधी की आत्मा को तीव्र आघात पहुॅचा और उन्होंने सितम्बर 1928 में 21 दिनों का अनशन किया। कलकत्ता में एकता सम्मेलन किया गया और राष्ट्रीय पंचायत की स्थापना की गयी, किन्तु उपर्युक्त उपायों का कोई सार्थक परिणाम नहीं निकल सका।

1927 में साइमन– कमीशन की नियुक्ति के साथ ही लीग में मतभेद उत्पन्न हो गया। मि0 जिन्ना के नेतृत्व में लीग का एक गुट भारत के अन्य राष्ट्रीय दलों के साथ मिलकर साइमन–कमीशन का विरोध करने के पक्ष में था लेकिन मि0 जिन्ना ने मार्च 1928 के सर्वदलीय सम्मेलन और इसके बाद नेहरू रिपोर्ट लागू करने में भाग लिया, लेकिन जब नेहरू रिपोर्ट लीग में पहुॅची, तो लीग में शफी गुट के अधिक शक्तिशाली होने के कारण उक्त रिपोर्ट अस्वीकार कर दी गयी। बहुत थोड़े समय में ही अखिल भारतीय स्तर के अनेक मुस्लिम नेंताओं–हमदल हुसैन, अजमल खॉ, डॉ0 अन्सारी, मो0 शफी और मो0 अली के देहावसान के कारण लीग का नेतृत्व मि0 जिन्ना के हाथ में आ गया जिन्होंने नेहरू रिपोर्ट को स्वीकार करने के लिए पहले तीन शर्तें और बाद में चौदह शर्तें रक्खीं जिन्हें कांग्रेस के द्वारा स्वीकार किया ही नहीं जा सकता था। मि0 जिन्ना की इन शर्तों में स्पष्ट था कि अब उन्होंने राष्ट्रीय दृष्टिकोण छोड़कर साम्प्रदायिक दृष्टिकोण अपना लिया है। गोल मेज परिषदों में स्पष्टतया यह देखा गया कि लीगीय–प्रतिनिधियों और प्रतिक्रियावादी तत्वों के

बीच गठबंधन हो गया है, जिसमें मुस्लिम साम्प्रदायिकता को बहुत बढ़ावा मिला। मुसलमान सामान्यतया सविनय अवज्ञा आन्दोलन से भी अलग रहे।

1922 से ही कांग्रेस और लीग के बीच अनेक मतभेदों के होते हुए भी 1937 के अन्य चुनावों में कांग्रेस और लीग के बीच अस्पष्ट सा समझौता था और इन चुनावों में कांग्रेस और लीग ने शासन की कृपा–प्राप्त उम्मीदवारों के विरूद्ध संयुक्त मोर्चा बनाया था। जिससे संयुक्त प्रान्त में विशेष तौर पर कांग्रेस लीग एकता सामने आयी थी। लेकिन चुनाव परिणाम इन दोनों दलों के लिए दुर्भाग्यपूर्ण सिद्ध हुए। चुनाव परिणाम में कांग्रेस को बहुत अधिक लोकप्रियता और मुसलमानों में भी लीग की नगण्य स्थिति होने के कारण लीग का निराश होना स्वाभाविक था। अतः जिन्ना ने कांग्रेस के साथ मिलकर संयुक्त मंत्रिमंडल बनाने की इच्छा व्यक्त की। कांग्रेस ने प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए भी इसके साथ कुछ ऐसी शर्तें जोड़ दी, जिन्हें लीग ने अस्वीकार कर दिया। मो0 जिन्ना ने कांग्रेस के प्रस्ताव को अपना अपमान समझा और उन्होंने अब यह नारा लगाना शुरू किया कि , 'कांग्रेस सरकार से मुसलमानों को न्याय प्राप्त नहीं हो सकता, स्वयं पंडित नेहरू ने स्वीकार किया कि, 'साम्प्रदायिक प्रश्न पर इस घटना के प्रभाव दुर्भाग्यपूर्ण थे और इसने काफी बड़ी संख्या में मुसलमानों में असन्तोष और पृथकता की भावना उत्पन्न कर दी। 'साइमण्ड्स ने तो लिखा है कि 'पाकिस्तान के निर्माण में इससे अधिक और किसी एक घटना ने सहायता नहीं दी।[13]

11 में से 08 प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रिमण्डल बन जाने के बाद लीग ने मुस्लिम जनता पर हिन्दुओं के अत्याचारों का ढिंढोरा पीटना शुरू कर दिया। विशेषकर संयुक्त प्रांत में लीग का यह प्रचार बिल्कुल झूठा था जिससे कांग्रेस में निष्पक्ष जॉच का प्रस्ताव किया गया, लेकिन झूठे आरोप के बावजूद भी लीग ने मुस्लिम जनता को बहकाने में सफलता प्राप्त कर ही ली। लीग ने मुसलमानों से कहा अगर तुम मुसलमान हो तो मुस्लिम लीग में जाओ, और मुसलमान लीग में इस तरह आयें, जैसे वह उनका धार्मिक कर्तव्य हो।''

सन् 1937–38 के राज्यों के चुनाव में जिन्ना की करारी हार हुई। सत्ता के लिए मुद्दों की खोज में लगे जिन्ना ने संकीर्णता का स्तर बढ़ाते हुए इस्लाम खतरे में है,''का नारा देकर अलग देश की मॉग कर डाली, किसी ने जिन्ना से यह नहीं पूछा कि जो राष्ट्र 1857 में अंग्रेजों के खिलाफ एक साथ लड़ाई लड़ सकता है वह 1947 तक हिन्दू और मुसलमान कैसे हो गया , जिसने अलगाववादी मानसिकता में एक अलग देश बनवा दिया।

1939 तक कांग्रेस और लीग का पारस्परिक विरोध इतना अधिक बढ़ चुका था इसका प्रमाण यह है कि महायुद्ध से उत्पन्न परिस्थितियों के कारण 8 प्रान्तों के कांग्रेसी मंत्रिमंडल द्वारा त्याग पत्र देना पड़ा। इस पर लीग ने 22 सितम्बर 1939 को मुक्ति–दिवस (Day of deliverence) मनाया। ब्रिटिश–शासन ने अपनी करवट बदलकर कांग्रेस की उपेक्षा और लीग का समर्थन करने की प्रवृत्ति अपना ली जिससे लीग की शक्ति में अधिक वृद्धि हो गयी।[14]

3. ''मुस्लिम लीग और द्वि–राष्ट्र सिद्धान्त'' –

1930 के लीग के इलाहाबाद अधिवेशन के अध्यक्षीय भाषण में सर मुहम्मद इकबाल ने जिस प्रकार का संकेत दिया था, उससे सामान्य रूप से उनको ही पाकिस्तान के 'द्वि–राष्ट्र सिद्धान्त' का जनक समझा जाता है, किन्तु इकबाल मुसलमानों के लिए प्रभुत्व सम्पन्न स्वतंत्र राज्य का निर्माण करने के पक्ष में नहीं थे, परन्तु कैम्ब्रिज के कुछ मुस्लिम छात्र इकबाल के विचारों से प्रभावित हुए और 1932 में कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी के छात्र रहमत अली ने 1933 में दक्षिण एशिया में पाकिस्तान कें निर्माण की योजना बनाई[15] लेकिन मुस्लिम नेता इस योजना को 'काल्पनिक और अव्यवहारिक' बताकर ज्यादा उत्साहित नहीं हुए थे।

मि0 जिन्ना और लीग के अन्य नेताओं ने 1933 के उसी काल्पनिक और अव्यवहारिक योजना को मार्च 1940 के मुस्लिम लीग के लाहौर अधिवेशन में स्वीकार कर लिया , और द्विराष्ट्र सिद्धान्त को प्रतिपादित करते हुए अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि, 'हिन्दू और इस्लाम धर्म शाब्दिक अर्थ में धर्म नहीं, वरन ये दो पृथक और स्पष्ट सामाजिक व्यवस्थायें हैं। हिन्दू और मुसलमान कभी एक राष्ट्र के रूप में रह सकते हैं, यह एक कोरा स्वप्न है। राष्ट्र की किसी भी परिभाषा के अनुसार मुसलमान एक राष्ट्र है, अतः उनका अपना प्रदेश और राज्य होना चाहिए।'' जिसका शायर इकबाल ने समर्थन किया था।

लीग के उपर्युक्त 'द्विराष्ट्र– सिद्धान्त' की आलोचना एवं विरोध न केवल कांग्रेस और बहुसंख्यक वर्ग के संगठनों वरन अनेक मुस्लिम संगठनों, 'मजलिस–ए–अहरार–ए– हिन्द' पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त के' खुदाई खिदमतगार, बलूचिस्तान के राष्ट्रवादी मुसलमान, अखिल भारतीय मोमिन सम्मेलन और अखिल भारतीय शिया राजनीतिक सम्मेलन

आदि ने किया। यद्यपि 'द्वि–राष्ट्र –सिद्धान्त' एक राजनीतिक मूर्खता थी, लेकिन स्वार्थी राजनीतिज्ञों के द्वारा इस मूर्खता का अपने लाभ के लिए खूब उपयोग किया गया। लीग अपनी इस मॉग को दृढ़तापूर्वक अपनाये रही और संवैधानिक गतिरोध दूर करने के लिए क्रिप्स – प्रस्ताव, राजगोपालाचारी और कैबिनेट मिशन योजना के रूप में जो भी प्रयत्न किये गये, ने लीग की हठधर्मी से टकराकर असफल हो गये।

सन् 1944 में गॉधी जी की रिहाई के बाद उन्होने कांग्रेस लीग समझौते के आधार रूप में एक योजना बनाई जो राजगोपालाचारी योजना के नाम से प्रसिद्ध है। उसी योजना के आधार पर गॉधी जी ने मि0 जिन्ना से बातचीत करने का प्रयत्न किया, लेकिन जिन्ना ने इसे अंगहीन, कीड़े लगे हुए तथा दीमक खाये हुए पाकिस्तान (Maimed, multilated and moth-eaten Pakistan) तथा 'पाकिस्तान का उपहास कहकर अस्वीकार कर दिया, साथ ही साथ इस योजना को देखने के बाद मि0 जिन्ना की हठधर्मी में बृद्धि ही हुई। लीग ने कैबिनेट मिशन योजना को स्वीकार कर लिया था, लेकिन 'प्रान्तों के समूहीकरण योजना' के प्रसंग में मतभेदों का बहाना बनाकर उसने इस योजना को भी अस्वीकार कर दिया।

1945 तक जब संवैधानिक उपायों से लीग को अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफलता नहीं मिली, तो लीगने मुसलमानों को साम्प्रदायिक उपद्रवों के लिए उत्तेजित करना प्रारम्भ कर दिया। कलकत्ता के समाचार पत्र 'दि स्टेट्समैन' के 05 अगस्त 1946 के अंक में मुस्लिम लीग के एक प्रमुख नेता शाहिद सुहरावर्दी ने लिखा– 'रक्तपात और अव्यवस्था अनिवार्य रूप से अपने आप में बुराई नहीं है, यदि इनका प्रयोग श्रेष्ठ लक्ष्य के लिए किया जाय। मुसलमानों के सम्मुख इस समय कोई भी लक्ष्य पाकिस्तान से श्रेष्ठतर नहीं हो सकता।[16]

इसके अलावा लीग के अन्य उत्तेजक भाषणों ने मुसलमानों को साम्प्रदायिक उपद्रवों के जिए उकसाया था। मुस्लिम लीग ने 16 अगस्त, 1946 को 'प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस' निश्चित किया। बंगाल की लीगी सरकार ने इस दिन सार्वजनिक छुट्टी कर दी। इस दिन कलकत्ता एवं सिलहट में गम्भीर उपद्रव हुए और अकेले कलकत्ता के नरमेंध में लगभग 7000 ब्यक्ति मारे गये। हिंसा की आग पूर्वी बंगाल तक जा पहुॅची। नोआखाली और त्रिपुरा में जो रक्तपात और अत्याचार हुआ, उसने चारो ओर आतंक फैला दिया। बिहार, गढ़मुक्तेश्वर, लाहौर तथा रावलपिण्डी में भी भीषण दंगे हुए। मुसलमानों नें हलाकू तथा चंगेजखॉ के दिन फिर से लाने की धमकी दी। बंगाल और पंजाब की सरकारों ने उपद्रवों को दबाने का प्रयास नहीं किया। इस प्रकार के कानून भंग के वातावरण में 20 फरवरी 1947 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने घोषणा की कि, ''ब्रिटिश सरकार जून 1948 के पूर्व ही भारतीयों के हाथों में शक्ति का हस्तान्तरण कर देंगी,'' लेकिन स्थिति बद् से बदतर होती जा रही थी और ऐसा प्रतीत हो रहा था कि भारत के विभाजन का एकमात्र विकल्प गृह–युद्ध ही है। इस पृष्ठभूमि में 03 जून 1947 को लार्ड माउंटबेटन नें अपनी योजना पेश की, जिसमें भारत तथा पाकिस्तान इन दो पृथक उपनिवेशों की स्थापना की ब्यवस्था की गयी थी। बद्तर परिस्थिति को देखते हुए कांग्रेस सहित भारत के सभी वर्गो ने इस योजना को स्वीकार कर लेना ही बुद्धिमत्तापूर्ण समझा। इस योजना के आधार पर ब्रिटिश संसद ने जुलाई 1947 में ''भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम'' स्वीकार किया। 14 अगस्त 1947 को मि0 जिन्ना को पाकिस्तान का गवर्नर जनरल घोषित किया गया और उसी दिन पाकिस्तान ने एक वास्तविक रूप धारण कर लिया।

सन्दर्भ सूची :

[1] महात्मा गॉधी (संकलित कूपलैण्ड) आइबिड, पृ0 65 – दि प्राबलम आफ कम्युनिलिज्म इज को– इविल विथ दि ब्रिटिश ऐडवेण्ट इन इण्डिया – आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस 1995।

[2] आन्ध्र – प्रदेश के मुस्लिम समुदाय में सामाजिक और शैक्षणिक वर्ग की पहचान– दैनिक जागरण (वाराणसी) 11 अगस्त 2008।

[3] एल0 पी0 शर्मा – मध्यकालीन भारत – पृ0–35–प्रकाशक लक्ष्मी नारायण अग्रवाल– आगरा –2004।

[4] कांग्रेस प्रेसिडेन्सियल ऐड्रेस – इण्डियन एनुअल रजिस्टर 1924 पृ0 69।

[5] आलोक मेहता एवं पटवर्धन – आइविड– द कम्युनल ट्रिंएगिल इन इण्डिया पृ0 62 मैक्समिलन प्रकाशन – लंदन 1955।

[6] वही आइविड– द अवेकनिंग आफ इण्डिया– पृ0 86 एशिया पब्लिसिंग हाउस – दिल्ली 1944।

[7] तुफैल अहमद – मुसलमानों का रोशन मुस्तकबिल–पृ0 363–364समता प्रकाशन लखनऊ– 1935।

[8] डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद – इण्डिया डिवाइडेड– पृ0 117– आक्सफोर्ड प्रेस लंदन– 1947।

[9] डॉ0 महीप सिंह– सम्प्रदाय बनाम साम्प्रदायिकता– पृ0 97 सर्व सेवा संघ प्रकाशन– 1950।

[10] डॉ0 पुखराज जैन – राष्ट्रीय आन्दोलन और भारतीय संविधान – पृ0 89–90–साहित्य भवन आगरा 1998।

[11] गैरट–ऐन इण्डियन कमेंट्री–पृ0 179– मैक्समिलन न्यूयार्क– 1959।

[12] डॉ0 पुखराज जैन – राष्ट्रीय आन्दोलनऔर भारतीय संविधान पृ0 90–साहित्य भवन आगरा1998।

[13] सायमण्ड्स – द मेकिंग आफ पाकिस्तान पृ0 53 – आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस –1946।

[14] वही.....पृ055–56।

[15] छात्र रहमत अली – नाऊ आर नेवर – आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस– 1933।

[16] संकलित मोस्ली, आइविड–पृ0 32 –शाहिद सुहरावर्दी, नवल किशोर प्रेस– कानपुर।